International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 151-154

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5): 151-154
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-07-2021
Accepted: 25-08-2021

सचिन
शोधछात्र, संस्कृतविभाग, दि. वि. दि., नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
सचिन
शोधछात्र, संस्कृतविभाग, दि. वि. दि., नई दिल्ली, भारत

सर्वप्रत्ययभासयिता - शब्दब्रह्म

सचिन

प्रस्तावना

सृष्टि के उत्पादक एवं नियामक शक्तियों के विषय में जब हम विचार करते हैं तो मन में विभिन्न प्रकार की की जिज्ञासाओं का प्रादुर्भाव होता है। हम देखते हैं कि सूर्य समय पर उदय होता है समय पर अस्त होता है दिन एवं रात भी एक कालचक्र के रूप में यथासमय पर परिवर्तित होते रहते हैं ऋतुएँ यथाक्रम- यथासमय ही आती है इस प्रकार समस्त सृष्टि का नियन्ता कौन है किसकी शक्ति के द्वारा ये समस्त जगतप्रपञ्च नियन्त्रित है इन सभी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए एक सर्वनियन्ता, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर शक्ति को स्वीकार करना पड़ता है जिसे कुछ लोग ईश्वर, ब्रह्म, रूद्र, इन्द्र इत्यादि विभिन्न संज्ञाओं से जानते हैं। इसी ईश्वर या ब्रह्म का स्वरूप क्या है उसकी उपादेयता उसकी सर्वव्यापकता एवं सर्वज्ञता कैसे है इन सभी विषयों का प्रतिपादन, ब्रह्म या ईश्वर के विषय में जिज्ञासा, ऊहापोह आदि हमें विश्व की सबसे प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद में ही प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि एक ही 'तत्त्व' इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि विभिन्न नामों से कहा जाता है। [1] यह एक 'तत्त्व' वेदों में 'ऋत' के नाम से सुरक्षित है। ऋत का अर्थ है- सत् तत्व। इस सत् तत्व का ही पुरुष, हिरण्यगर्भ, प्रजापति और विश्वकर्मा आदि अनेक रूपों में वर्णन प्राप्त होता है।

इसी सत् का व्याख्यान सभी दार्शनिक सम्प्रदाय भी अपने-अपने सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण से करते हैं। कुछ दार्शनिक सम्प्रदाय इस 'सत्' ब्रह्म में विश्वास नहीं करते इसलिए उन्हें नास्तिक सम्प्रदाय के रूप में विभक्त किया है। चार्वाक, बौद्ध तथा जैन नास्तिक दर्शन हैं जो ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कते हैं किन्तु मीमांसा एवं सांख्य ईश्वर का विरोध करते हैं किन्तु अन्य रूप में इसके अस्तित्व में मानते हैं।

नामरूपात्मक भवबन्धन में अज्ञानवश फँसे हुए प्राणीमात्र का चरम लक्ष्य है मोक्षप्राप्ति। मोक्ष का स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति है। अन्तरतम में अवस्थित शब्द ब्रह्मस्वरूप के स्फोटाख्यस्वरूप का साक्षात्कार व्याकरण के माध्यम से ही सम्भव है इसलिए आगमवाक्यार्थ अवबोध के लिए वेदों के मुख व्याकरण का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए। ब्रह्म का साक्षात्कार ही मोक्ष है वही व्याकरण का परम प्रयोजन है एवं 'व्याकरण के बिना शब्दतत्व का ज्ञान सम्भव नहीं है' यह गौण प्रयोजन है। अत: सर्वप्रथम ब्रह्मस्वरूप तत्पश्चात् उसकी प्राप्ति उपायभूत वेदों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के बाद ही व्याकरण शास्त्र का प्रारम्भ करना चाहिए।

तस्मादकृतकं शास्त्रं स्मृतिश्च सनिबन्धनाम्।
आप्रित्यारभ्यते शिष्टै: शब्दानामनुशासनम् ।। [2]

शब्दब्रह्म का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए भर्तृहरि ने वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड की प्रथमकारिका में ब्रह्म को उत्पत्ति और नाश से रहित अर्थात् नित्य प्रतिपादित किया है। वह शब्दस्वरूप है, अक्षर है जिससे जगत् के समस्त विकास अर्थ के रूप में विवर्त को प्राप्त होते हैं। [3]

ब्रह्म की दो दशाओं का वर्णन शास्त्रों में प्रसिद्ध है। एक तो विद्या से अप्रविभाग दशा दूसरी अविद्या से प्रविभाग दशा। [4] प्रविभागदशा में ब्रह्म विविध विकल्पों में दृष्टिगोचर होता है किन्तु उसी एक ब्रह्म का ही धर्मध्यादिरूप में साक्षात्कार होता है। घड़ा हुआ, हो रहा है, होगा इस काल भेद से, भिन्नजातिकृतविभाग गाय, घड़ा आदि, कहीं भावगत कहीं अभावगत किन्तु कार्यरूप में प्रविभक्त ब्रह्म अप्रविभागदशा में उस प्रकार के सभी विकल्पों से परे हैं। [5]

प्रविभाग अभाव दशा में वह ब्रह्म भेद अभेद से अनिर्वचनीय सर्वकार्यानुकुल शक्तियों से युक्त रहता है। वे शक्तियाँ वह्न्यादिशक्तियों के समान सर्गादिकार्य के रूप में अनुमेय हैं ऐसा नहीं है कि भेदाभेद से अनिर्वाच्य होने से शशविषाण के समान अविभाग दृष्टिगोचर होता है। उन्हीं शक्तियों के कारण से जो विद्याशक्ति से मुक्तरूप है वह सर्वविकल्पातीत है और जो अविद्याशक्ति से युक्त रूप है विकल्पमय दिखाई पड़ता है। जो ब्रह्म के संसार की अविवर्तावस्था सर्वविकल्पातीत रूप है वहीं अनादिनिधन के माध्यम से प्रतिपादित किया है। [6] अर्थात् जो उत्पत्ति एवं विनाश से रहित है। इसी प्रकार धर्म एवं धर्मी के रूप में सर्वविकल्पशून्य होने से जगत् की विवर्त अवस्था में भी ब्रह्म अनादिनिधन ही है। जो अनादिनिधन ब्रह्म है वह शब्दतत्वात्मक है।

समस्त सांसारिक रूपादि विषय अन्ततः शब्दरूप से जुड़े हुए हैं। अविद्या के कारण भिन्नरूप माने जाने वाले सभी पदार्थ किसी शब्दरूप से जुड़ते हैं। शब्द ही सभी पदार्थों का ग्रहण कराता है। शब्द के बिना उनका निरूपण सम्भव ही नहीं है। कहा भी है-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। [7]

अतः संसार के समस्त विषयों (विकल्पों) की प्रकृति शब्दतत्व ही है। [8]

स्थितिप्रवृत्तिनिवृत्तिरूप समस्त व्यवहार शब्द के माध्यम से ही किये जाते हैं इससे भी उन विषयों का उन व्यवहारों का मूलभूत शब्दात्मक ब्रह्म ही है इसलिए भी शब्दतत्व ऐसा प्रयोग ब्रह्म से ही जुड़ता है। अतः शब्दतत्व के रूपादिविषयविवर्त हैं ऐसा स्वीकार करना चाहिए। इसलिए शब्दतत्व ब्रह्म कहा गया है। वह शब्दात्मक ब्रह्म अक्षरों (वर्णों) का कारण है इसीलिए ब्रह्म को अक्षर कहा गया है कार्य एवं कारण के अभेदोपचार से। [9]

यदि ब्रह्म शब्दात्मक है और उससे भिन्न कुछ नहीं तो इसका अर्थ यह हुआ कि शब्द से भिन्न कुछ है ही नहीं फिर शब्द अभिधान किसका करता है और इसका समाधान भर्तृहरि के इस कथन में मिलेगा कि अर्थ के रूप में जगत् रूपी विवर्त ब्रह्म में ही प्रकट होता है। [10]

विवर्तवाद-

विवर्त के प्रसंग में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है कि भर्तृहरि विवर्तवादी थे या नहीं। इस मतभेद का प्रमुख कारण भर्तृहरि द्वारा स्वयं परिणाम एवं विवर्त दोनों शब्दों का प्रयोग करना। उन्होंने शब्दब्रह्म से हुए विश्व के विकास को 'विवर्त' कहा है। [11] परन्तु-

शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः।
छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत।। [12]

इस कारिका में भर्तृहरि ने 'शब्दस्य परिणामोऽयं' कहकर संसार को शब्दब्रह्म का परिणाम भी माना है तथा 'एतद्विश्वं व्यवर्तत' कहकर उसे विवर्तरूप में भी प्रतिपादित किया है। अर्वाचीन दर्शनों में परिणाम और विवर्त दोनों के अर्थ एवं सिद्धान्तों में पर्याप्त मतभेद स्वीकार किया गया है। उपादान कारण की सत्ता के समान सत्ता वाले कार्य की उत्पत्ति को 'परिणाम' कहते हैं। जैसे दूध व्यवहारतः सत् है अतः दधि दूध का परिणाम है। उपादान कारण की सत्ता से विषम सत्ता वाले कार्य की उत्पत्ति को 'विवर्त' कहते हैं। जैसे शुक्तिका में रजत की भ्रान्ति। [13] शुक्तिका की सत्ता व्यावहारिक है परन्तु रजत की सत्ता प्रातिभासिक होने से इससे विषम है। परिणामवाद सांख्यशास्त्रियों का प्रसिद्ध हुआ जहाँ स्थूल प्रकृति को मूलप्रकृति का समसत्ताक परिणाम कहा गया है। विवर्तवाद वेदान्तियों का विख्यात हुआ जहाँ ब्रह्म को सत्य कहकर उसके विवर्तजगत् को रज्जु में सर्प की या शुक्तिका में रजत की प्रतीति की तरह मिथ्या कहा गया है।

व्याकरण दर्शन में शब्दाद्वयवादी आचार्य भर्तृहरि ने जो कि शंकर से लगभग 350 वर्ष पूर्व हुए ने जगत् को शब्दब्रह्म का 'परिणाम' भी कहा है और 'विवर्त' भी। अतः जिज्ञासा होती है कि भर्तृहरि वस्तुतः परिणामवादी हैं या विवर्तवादी? इस सम्बन्ध में दार्शनिक विद्वानों ने पर्याप्त परीक्षण के उपरान्त यही निष्कर्ष निकाला कि भर्तृहरि का दर्शन विवर्तवाद को ही स्वीकार करता है।

1. ब्रह्मकाण्ड की प्रथम कारिका की स्वोपज्ञ टीका में भर्तृहरि ने 'विवर्तते' पद की व्याख्या विवर्तपरक ही की है। [14]
2. भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में अधिकांशतया 'विवर्त' शब्द का ही प्रयोग सर्वत्र किया है।

3. वाक्यपदीय के सभी टीकाकारों ने विवर्तवाद को ही भर्तृहरि का अभिमत सिद्धान्त दर्शाया है। हेलाराज ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि भगवान भर्तृहरि का यह दर्शन सांख्यों के सिद्धान्त की भांति परिणामवादी नहीं है, अपितु यह तो विवर्तपक्ष को ही स्वीकार करता है। [15]
4. भर्तृहरि के इस विवर्तवाद की प्रतिष्ठापना रघुनाथ शर्मा करते हैं। वह अम्बाकर्त्री टीका में 'विवर्ततेऽर्थभावेन' इस पद की व्याख्या करते हैं कि- अपने स्वरूप से च्युत न होता हुआ किसी अन्य अर्थ में प्रतीत होना ही विवर्त है। [16] आगे भी शब्दस्यपरिणामोऽयं.....विदु: इस कारिका के व्याख्यानावसर पर कहते हैं कि- विवर्त एव शब्दब्रह्मवादिनां पक्ष: अन्ये आम्नाय विदु: विद्वांस: शब्दस्य परिणामभूतमिदं जगदिति वदन्ति। न तु वयं कल्पयाम:। [17] इसी कारिका के उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त एतद्विश्वं व्यवर्तत यहाँ पर व्यवर्तत इस शब्द की व्याख्या करते हुए वे इसका अर्थ व्यजायत इति लिखते हैं। [18]
5. अनेक तन्त्रकारों तथा सर्वदर्शन संग्रह के कर्ता श्री माधव ने भी शब्दविवर्तवादी के रूप में ही भर्तृहरि का स्मरण किया है। [19]

परन्तु यहाँ यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि भर्तृहरि जब विवर्तवादी हैं तो उन्होंने शब्दस्य परिणामोऽयं कारिका में विश्व को शब्द का परिणाम और विवर्त दोनों क्यों कहा है? इस सम्बन्ध में टीकाकारों तथा समीक्षकों का कथन है कि ये दोनों शब्द बाद में भिन्न अर्थों में रूढ़ हुए हैं। प्राचीन समय में ये दोनों शब्द पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते थे।

इसी प्रकार शान्तरक्षित ने तत्वसंग्रह में वाक्यपदीय की प्रथम कारिका के अनुवाद में 'विवर्तते' का अर्थ परिणाम किया है। [20] आदिशंकराचार्य [21] तथा भवभूति [22] ने भी परिणाम के समानार्थक विकार शब्द के साथ विवर्त शब्द का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि विवर्तवादी भर्तृहरि ने परिणाम शब्द का प्रयोग विवर्त के अर्थ में ही किया है।

विवर्त को व्याख्यायित करते हुए भर्तृहरि स्वोपज्ञवृत्ति में स्वप्नप्रतिभास का उदाहरण देते हैं। अम्बाकर्त्रीकार कहते हैं कि जिस प्रकार स्वप्नावस्था में एक ही ज्ञान में अनेक पदार्थों की प्रतीति होते हुए भी यह प्रतीति सत्य नहीं है क्योंकि उन पदार्थों की कोई बाह्य सत्ता भी नहीं है और न ही उससे ज्ञान का बाध होता है। उसी प्रकार शब्दतत्वात्मक ब्रह्म जागतिक पदार्थ की सत्ता में प्रतीत होते हुए भी उसके एकत्व को प्रभावित नहीं करते। यह प्रतीति अविद्या के द्वारा ही प्रतिभासित होती है। [23]

इसी शब्द ब्रह्म से त्रयीरूप में प्रथमत: सकल जगत् की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार अम्बाकर्त्रीकार कारिका में प्रयुक्त जगत्पद को समस्त आगमों में लाक्षणिक मानते हैं एवं श्रुति का प्रमाण भी उपस्थापित करते हैं।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै

इन श्रुति वचनों से श्रवण होती है। अर्थात् समस्त विकारों का प्रलय होने पर वर्णमात्रापदादि भी जिसमें लीन हो गये हैं इस प्रकार सिर्फ शब्दाख्यब्रह्म ही शेष रहता है यही ब्रह्म की सर्वतावस्था है। [24]

समस्तसंसार के मूलकारण अनादिनिधन शब्दब्रह्म के स्वरूप का वर्णन प्रथमकारिका से प्रारम्भ किया उसी शब्दब्रह्म के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

> शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी।
> यन्नेत्र: प्रतिभात्मायं भेदरूप: प्रतीयते।। [25]

इस विश्व की कारणात्मक शक्ति शब्दों में ही आश्रित है। विश्वस्य निबन्धनी अर्थात् वाच्य एवं वाचकरूप इस संसार की नियामिका 'अर्थात् यह शब्द इसी अर्थ का वाचक है' इस प्रकार की नियमप्रयोजिक शक्ति शब्द के ही आश्रित है। [26] 'यन्नेत्र:' इस पद में लक्षणा स्वीकार करते हैं क्योंकि नेत्र के प्रकाशसाधन शब्दशक्ति में साधर्म्यता होने से। शब्दशक्ति एवं नेत्र दोनों ही प्रकाश के साधन हैं।

शब्द के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है कि कोई भी भाव कोई भी ज्ञान हमारे व्यवहार का विषय बन सके अत: समस्त व्यवहारों का कारण शब्द ही है भर्तृहरि कहते हैं कि-

> षड्जादिभेदेन शब्देन व्याख्यातो रूप्यते यत:।
> तस्मादर्थविधा: सर्वा: शब्दमात्रासु निश्रिता:।। [27]

शब्दब्रह्म से संसार की उत्पत्ति मानने वाले भर्तृहरि मूलतत्व की शब्दात्मकता का सिद्धान्त मात्र अनुमान पर आधारित परिकल्पना मात्र नहीं अपितु इसके पीछे आम्नाय के सुदृढ़ आधार को स्वीकार करते हैं। [28]

संसार के समस्त क्रिया-कलाप समस्त ज्ञान शब्द से ही जुड़ा हुआ है ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो कि शब्द के विना व्यवहार में लाया जा सके। शब्द के इस माहात्म्य को भर्तृहरि ने इस प्रकार प्रतिपादित किया है-

> न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य: शब्दानुगमादृते।
> अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।। [29]

संसार के किसी उपदेष्टा की बुद्धि में स्थित ऐसा ज्ञान नहीं है जो कि किसी शब्द से जुड़ा न हो। यहाँ पर अनुभव ही प्रमाण है। क्योंकि जो भी ज्ञान अनुभव में आता है उसका शब्द के साथ तादात्म्य स्पष्टत: प्रतीत होता है। अर्थात् ज्ञान

और शब्द अपृथक् रूप में, शब्द के निमित्त से ही ज्ञान आभासित होता है। [30]

संदर्भ

1. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:।। ऋ. १.१६४.४६
2. तत्र शब्दतत्वस्य ब्रह्मण: स्फोटाख्यस्य साक्षात्कारो व्याकरणेन.....तत्प्राप्त्युपायभूतस्य वेदस्य प्रामाण्यञ्च व्यवस्थाप्य तन्मूलकं व्याकरणशास्त्रमारम्भणीयमिति।। अम्बाकर्त्री टीका, कारिका-१
3. अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षर्। विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत:।। वाक्यपदीय, ब्र.-१
4. ब्रह्मणो हि दशाद्वयी शास्त्रे प्रसिद्धा। एका विषयाऽप्रविभागदशा.....।। अम्बा.का.१ -पृ.२
5. तादृश सर्वविकल्पातीतं ब्रह्मतत्वम्।। अम्बा.कार. -१, पृ.२
6. यच्च ब्रह्मणो जगद्रूपेणाविवर्तावस्थायां सर्वविकल्पातीतं रूपं तदेवात्रानादिनिधनमिति निर्दिष्टम्।। अम्बा.-का.-१, पृ. २
7. वाक्यपदीयम् १, का. १२३
8. अत एषां प्रकृति: शब्दतत्वमेव ब्रह्मेति।। अम्बा.का.-१, पृ. ४
9. अक्षरानां वर्णानां निमित्तत्वादक्षरमित्युच्यते, कार्यकारणयोरभेदोपचारात्।। अम्बा.१, का.-१, पृ. ४१
10. एकस्य तत्वादप्रच्युतस्य भेदानुकारेणासत्यविभक्तान्यरूपोपग्राहिता विवर्त:।। वृत्ति- का.-१, पृ. ५
11. अनादिनिधनं ब्रह्म.....प्रक्रिया जगतो यत:।। वा.प.१.१
12. वाक्यपदीयम् १.१२०
13. उपादानसमसत्ताककार्यापत्ति: परिणाम:। यथा दुग्धस्य दधि भवनम्।
    उपादानविषमसत्ताककार्यापत्ति: विवर्त:। यथा शुक्तिकाया: रजतभवनम्।। - वा.प.१.२० पर भावप्रदीप टीका
14. एकस्य तत्वादप्रच्युतस्य भेदानुकारेणासत्यविभक्तान्यरूपोग्राहिता विवर्त:। स्वप्नविषयप्रतिभासवत्।। वा.पा. स्वोपज्ञटीका, का.-१
15. नेदं सांख्यनयवत् परिणामदर्शनम् अपितु विवर्तपक्ष:।। वा.प. का.-३, द्र. समु.१४ पर हेलाराज
16. स्वरूपादप्रच्युतं सदर्थरूपतया प्रतीयत इत्यर्थ:।
17. अम्बाकर्त्री टीका १, का.-१२०, पृ. १७६
18. व्यवर्तत व्यजायत इत्यर्थ:। अ.टी. का.१, का.-१२०, पृ. १७६
19. सर्वदर्शनसंग्रह:, पा.द., पृ. ५२४ 'चौखम्बा संस्करण'
20. नाशोत्पीडसमालीढं ब्रह्मशब्दमयं परम्। यत्तस्य परिणामोऽयं भावग्राम: प्रतीयते।। तत्त्वसंग्रह: १२८
21. यत्तत्सुखदु:खमोहात्मकं.....विचित्रेण विकारात्मना विवर्तते।। ब्र.सू.शां.भा. २.२.१.१
22. एको रस: करुण:.....भिन्न: पृथक् पृथागवाश्रयते विवर्तान्। आवर्तबुद्बुदतरंगमयान् विकारान्।। उ.रा.च. ३.४७
23. अम्बाकर्त्री का.-१, का.-१, पृ.-५
24. सेयं ब्रह्मणोऽवस्था 'संवर्त' इत्युच्यते।। वही, पृ.६
25. वाक्यपदीयम्, का.१, का.-११८
26. अयमेव शब्दऽस्यैवार्थस्य वाचक: इति नियमप्रयोजिका शक्ति: शब्देष्वेवाश्रिता।। वही, पृ.१६२
27. वाक्यपदीय, काण्ड-१, का.११९ न हि शब्दाव्यपदेश्येन स्वरूपमात्रेण चक्षुरादिभि: परिच्छिन्नोऽर्थो व्यवहारविषयो दृष्ट:।
    स्वप्रज्ञापिकासु स्वप्रज्ञप्तये निश्रिता नितरां श्रिता: सम्बद्धा:।। वही-पृ. १७४
28. परमाणुसमूहं सर्वविकारोपादानं व्यवस्थापयन्ति।। अम्बाकर्त्री, काण्ड-१, का.-१२०
29. शब्देनानुविद्धमिव सर्वं ज्ञानं स्वग्राहकेण ज्ञानेनानुव्यवसायेन साक्षिणा वा निमित्तेन भासत इति। वही पृ.१८३
30. अत्रेव शब्द प्रयोगो वस्तुत: शब्दार्थयोस्तादात्म्यभावेन तन्मूलकवाच्यता सम्बन्धस्य चाप्यमावेनेति।